डेरी समाचार

भाकृअनुप – राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल की त्रैमासिक विस्तार पत्रिका

वर्ष 46 | जनवरी – मार्च 2017 | अंक – 1

पशु स्वास्थ्य विशेषांक

डेरी पशुओं के प्रजनन रोग

डा. ओमवीर सिंह

प्रायः गाय भैसों को प्रति वर्ष या 13–14 महीने में ब्याँना अपेक्षित होता है लेकिन वास्तव में ऐसा न होने पर इनकी दो ब्याँत के बीच की अवधि लम्बी हो जाती है जो कि पशुपालकों के लिए आर्थिक रूप से बहुत हानिकारक सिद्ध होती है। इससे पशु का दुग्ध उत्पादन व प्रजनन दोनों ही प्रभावित होते हैं। आमतौर पर ऐसा दो मुख्य व्याधियों के कारण होता है। एक तो पशु का समयनुसार गर्मी में न आना और दूसरे पशु का बार–बार गर्मी में आना। अगर कोई गाय दो या तीन मदकाल में टीका लगने के बावजूद गाभिन न हो तब इन पशुओं को रिपीटर माना जाता है। रिपीटर होने के मुख्य संभावित कारण निम्नलिखित हैः–

1. पशु के गर्भाशय में संक्रमण

इस अवस्था में पशु का गर्भाशय संक्रमित हो जाता है इससे मैट्राइटिस, एन्डोमैट्राइटिस या पायोमेट्रा की स्थिति हो जाती है और ऐसी स्थिति में गाय या भैंस या किसी भी मादा पशु का गाभिन हो पाना असंभव होता है। इस स्थिति की पहचान आमतौर पर मदकाल के दौरान योनि से गिरने वाले स्राव को देखकर की जा सकती है। स्वस्थ गर्भाशय की स्थिति में यह स्राव पारदर्शक या पानी जैसा एवं लसलसा होता है। यह स्राव मटमैले या पीले रंग का होना गर्भाशय की संक्रमित स्थिति की ओर संकेत करता है जिसमें एन्डोमैट्राइटिस या मैट्राइटिस की आशंका हो जाती है। इसके उपचार हेतु मदकाल के दौरान ऐसे पशु में गर्भाधान ना करके उसके गर्भाशय में उचित दवाईयाँ जैसे एन्टीबायोटिक्स घोल दो दिन गर्भाशय में ही छोड़ते हैं। पायोमेट्रा की स्थिति में यह स्राव बदबूदार होता है। प्रायः मवाद या छछडें भी गर्भाशय में उत्पन्न हो जाते है और दुधारू पशुओं में दूध उत्पादन भी घट जाता है। इसके उपचार हेतु पशु के गर्भाशय को कई बार उपयुक्त दवाईयों के साथ सफाई की जाती है और साथ ही एन्टीबायोटिक के टीके भी पशु में रोजाना या सुबह सांय 4–5 दिन तक लगाये जाते हैं।

2. अण्डे का अधूरा विकास

अण्डों का विकास डिम्ब के अन्दर होता है और यहाँ मौजूद बहुत से फोलिकिल्स में से एक फोलिकल को पूर्ण विकसित होना होता है। मदकाल के दौरान इस ग्रेफियन फोलिकल के फटने की प्रक्रिया के फलस्वरूप अण्डा बाहर निकलता है और इस अण्डे का शुक्राणु से मिलन होने की प्रक्रिया ही निषेचन कही जाती है और यही भ्रूण विकास की प्रथम प्रक्रिया है। इसमें आमतौर पर निम्न असामान्य स्थितियाँ हो सकती है जिनके चलते पशु गर्भधारण करने में असमर्थ होते है।

1. ग्रैफियन फोलिकल पूर्ण विकसित न हो पाना।
2. ग्रैफियन फोलिकल (जी.एफ) का सही समय में न फूट पाना।

3. स्वस्थ शुक्राणुओं का अभाव

स्वस्थ विकसित अण्डे का जी.एफ. से बाहर निकलने के बाद 6–8 घन्टे के अन्दर स्वस्थ शुक्राणुओं से मिलन होने पर ही निषेचन प्रक्रिया सम्भावित हैं। अगर किन्ही संभावित कारणों से ऐसा नहीं हो पाता तब पशु की गर्भधारण की स्थिति नहीं बन पाती है और ये सम्भावित मुख्य कारण निम्नलिखित हैः–

गर्भाधान मे प्रयोग सांड के वीर्य में शुक्राणुओं की शिथिलता होना या निष्क्रिय होना या इनकी संख्या बहुत कम होना। ऐसा

प्रायः तब होता है जब एक ही सांड को हम हफ्ते में दो या तीन बार से ज्यादा इस्तेमाल करते है। वीर्य भंडारण के लिए उपयोग की गई तरल नाईट्रोजन स्तर में कमी। ऐसी अवस्था में प्रशीतित वीर्य के शुक्राणु मृत अवस्था में पंहुच जाते हैं। इन्हीं स्थितियों के चलते मादा पशु स्वस्थ होते हुए भी गाभिन नही हो पाती, इसके लिये आवश्यक है कि सांड का चयन ठीक से करें और कृत्रिम गर्भाधान में इस्तेमाल होने वाले वीर्य की गुणवत्ता की जांच भी समय–2 पर की जाए।

4. गर्भाधान का प्रतिकूल समय

प्रायः गाय या भैंस के बार–बार मदकाल में आना और गर्भाधान के बावजूद गर्भित न हो पाना गर्भाधान का प्रतिकूल समय एक मुख्य कारण होता है। आमतौर पर किसान पशु को मदकाल की प्रथम अवस्था में ही गर्भाधान कराते हैं जबकि अंडाशय से अंडे के छूटने का समय मदकाल की मध्यम व अन्तिम अवस्था के बीच में होता है और तब तक ये शुक्राणु निष्क्रिय हो चुके होते हैं। ऐसी परिस्थिति में अंडे व शुक्राणुओं के मिलने से होने वाली निषेचन प्रक्रिया नहीं हो पाती और पशु गर्भित नहीं हो पाता। इसके लिये आवश्यक है पशु को मदकाल की मध्य से अन्तिम (12 से 18 घंटे) अवस्था के बीच गर्भाधान करायें। उदाहरण के लिये जो गाय या भैंस सुबह गर्मी में आती है उसे शाम को गर्भाधान करायें और उसके गर्मी में रहने तक सुबह शाम के अन्तराल पर कराते रहें। ऐसा कराते हुए तीन या चार बार तक भी गर्भाधान कराने से निश्चित रूप से गर्भाधान की सम्भावनाएं बढ़ती हैं।

ध्यान देने योग्य बातें :

- मदकाल व गर्भाधान का लिखित रिकार्ड रखें।
- मदकाल में गिरने वाला स्राव अगर साफ एवं पारदर्शक नहीं है तो गर्भाधान कराने की बजाय उसका उपयुक्त इलाज कराएं।
- गर्भाधान के बावजूद मदकाल की दो या तीन बार से ज्यादा पुनरावृत्ति होने पर पशु को अनेकों बार गर्भित कराते रहने की बजाए उसकी उचित जाँच एवं तुरन्त उपचार करवाएं। ऐसा न करने पर पशु के अन्दर की बीमारी बढ़ती चली जाती है जिसका बाद में उपचार कर पाना ज्यादा मुश्किल होता है।
- उपयोग किया जाने वाला सांड या इसके वीर्य की गुणवत्ता व गर्भाधान का उचित समय का ध्यान रखना बहुत जरूरी है।
- पशु की जाँच योग्य पशुचिकित्सक से ही करवाएं और उपचार विधि का पालन नियमित होना चाहिए।
- पशुपालकों का इस समस्या की तरफ समयपूर्वक सचेत होकर आवश्यक चरणों का अनुसरण करने में मदकाल की पुनरावृत्ति को घटाने में काफी हद तक सहायक सिद्ध होता है।

पशुओं में थनैला रोग के लक्षण व रोकथाम के उपाय

डा. एस.एस. लठवाल

यह रोग दुधारू पशुओं में कई प्रकार के जीवाणुओं द्वारा होता है। इस रोग से दुग्ध व्यवसाय में काफी आर्थिक हानि होती है। दुधारू पशुओं में यह रोग ज्यादा पाया जाता है। इस रोग से प्रभावित पशु के दूध में भौतिक, रासायनिक व सूक्ष्मजीवी परिवर्तन हो जाते है और पशुओं के थनों में सूजन व खराबी आ जाती है। दूध का रंग व स्वाद बदल जाता है। दूध में थक्के दिखाई देते हैं। रोग से प्रभावित पशु के दूध उत्पादन में 21 प्रतिशत एवं वसा में 25 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है।

प्रभावित पशु : यह रोग सभी नस्लों की दुधारू गायों, भैंसों, बकरी, भेड़, सुअर व घोड़ों में होने की संभावना होती है। ज्यादा दूध देने वाले पशुओं में यह रोग कम दूध देने वाले की अपेक्षा अधिक होता है। जैसे–जैसे ब्याँत की संख्या बढ़ती जाती हैं, इस रोग के संक्रमण की संभावनाएँ बढ़ती जाती है। आमतौर पर विदेशी व संकर नस्ल की गायों में यह रोग देशी नस्ल की गायों की अपेक्षा अधिक होता है।

रोग प्रसार के प्रकार : इस रोग का संक्रमण थन छिद्रो में जीवाणुओं के प्रवेश से होता है। इसका संक्रमण दो प्रकार से होता है। जीवाणु जो थन में पाये जाते हैं व दूसरे जो वातावरण में मौजूद रहते हैं। यह रोग दूध निकालने वाले के गन्दे हाथों, कपड़ों व मशीन द्वारा भी फैलता है।

रोग फैलाने के कारक : यह निम्न कारकों से प्रभावित होता है :– पशु की उम्र, पशु की नस्ल, ब्यांत की संख्या, दुग्ध दोहन की विधि व पूर्ण दूध निकालना, झुंड में पशुओं की संख्या, पशु आहार के प्रकार, मौसम,आनुवंशिकी, थन में चोट लगना, पशुओं व वातावरण की सफाई, पशुओं की रोग–प्रतिरोधक क्षमता, पहले से प्रभावित थन, जेर का न गिरना।

लक्षण :– यह रोग पशुओं में दो प्रकार का होता है।

(अ) **लक्षण रहित रोग (सब क्लीनिकल मैसटाइटिस):** इस रोग को सबक्लीनिकल थनैला रोग भी कहते हैं। लक्षण रहित रोग का पता केवल दूध की जाँच से ही चल सकता है, क्योंकि इस रोग में न तो थनों में सूजन आती है न ही थन गर्म प्रतीत होते हैं और न ही पशु दर्द महसूस करता है। दूध देखने से कुछ पता नहीं लगता लेकिन दुग्ध उत्पादन में कमी आ जाती है। इस लक्षण रहित रोग से किसान को सर्वाधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

लक्षण युक्त रोग (क्लीनिकल मैसटाइटिस) यह रोग चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

1. **अति तीव्र रोग :** इस प्रकार के रोग में पशु के शरीर का तापमान 106–107 डिग्री फा. तक चला जाता है, पशु चारा नहीं खाता व सांस की तकलीफ बढ़ जाती है। थनों में सूजन आ जाती है और पशु को दर्द अधिक होता है। पशु दूध देना बन्द कर देता है और अगर दूध स्रावित होता भी है तो वह रक्त युक्त होता है।
2. **तीव्र रोग :** इस रोग में शरीर का तापमान लगभग स्थिर रहता है। थन में सूजन आ जाती है और दूध पीला या भूरा रंग के गाढ़े द्रव के रूप में निकलता है जिसमें जमें पदार्थ भी होते हैं। संक्रमण केवल थनों या पूरे अयन में होता है। जिस तरफ की थनों में सूजन आ जाती है, पशु उस तरफ से लंगड़ा कर चलता है।
3. **कम तीव्र प्रकार :** इस प्रकार के रोग से दूध में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन दिखाई देते हैं परन्तु थन में कोई भी परिवर्तन नहीं होता है।

4. **धीमा प्रकार :** यह रोग की अंतिम अवस्था है। थन अधिक कठोर हो जाता है। दूध पीले या सफेद रंग का दिखाई देता है जिसमें ठोस पदार्थ दिखाई देते हैं। थन के छिद्र के निकट घाव दिखाई देते हैं।

उपचार : इस रोग का पता चलते ही पशु चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए। यदि सम्भव हो तो रोगी पशु के दूध की जांच के पश्चात ही उपचार शुरू करें।

थनैला रोग की रोकथाम :

1. पशु के बिछावन, फर्श, थनों व नाँद की सफाई रखें व फर्श की 5–7 दिन में एक बार कीटाणु–नाशक (फिनाइल) दवाई से सफाई करें।
2. इस रोग से प्रभावित पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग रखें।
3. रोगी पशु का दूध स्वस्थ पशुओं के बाद निकालें। स्वस्थ थनों का दूध प्रभावित थनों से पहले निकालें।
4. समय–समय पर दुधारू पशुओं के दूध की जांच करवाते रहना चाहिए।
5. प्रभावित पशु के थन से पूरा दूध निकाल लेना चाहिए। प्रभावित दूध न तो स्वयं प्रयोग करें और न ही जानवर को दें।
6. आजकल बाजार में जीवाणु रोधक घोल मिलते है। सम्भव हो तो दूध दोहन के बाद थनों को इस घोल में डुबायें।
7. बाहर से लाई गयी नई गाय का दूध सबसे बाद में निकालना चाहिए जब तक कि जांच से पता न चल जाये कि पशु थनैला रोग से प्रभावित नहीं है।
8. प्रभावित दूध में 5 प्रतिशत फिनाईल डालकर उसे फेंक देना चाहिए।
9. दूध दोहन के समय प्रारम्भिक कुछ धारें जीवाणु रोधक घोल में निकालनी चाहिएं। उन्हें कभी भी फर्श पर नहीं गिरने देना चाहिए।
10. दूध दोहन की सही विधि अपनाएँ व दूध पूरा निकालना चाहिए।
11. पशुशाला में गोबर व मूत्र की निकासी का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। मक्खियों इत्यादि से दुधारू पशुओं का बचाव करना चाहिए।
12. दूध दोहन के पश्चात पशु को खाने के लिए आहार देना चाहिएं जिससे कि दुग्ध दोहन के बाद पशु आधा घंटे तक बैठ न पाए क्योंकि दुग्ध दोहन के पश्चात् थन के छिद्र (15–20 मिनट) समय तक खुले रहते है जिससे कि संक्रमण होने के अवसर रहते हैं।
13. दूध निकालने वाले व्यक्ति के हाथ साफ होने चाहिए एवं नाखून कटे होने चाहिए।

ऑक्सीटोसिन के उपयोग द्वारा पशुओं के दुग्ध उत्पादन में वृद्धिःकुछ वैज्ञानिक तथ्य

डा. बी.एस. मीणा

दूध अयन में बनता है और दोहन तक अयन में ही रहता है। अयन में दूध को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। एक हिस्सा जो थन और बड़ी दुग्ध वाहिनियों में मिलता है उसे ''सिस्टर्न दूध'' कहते हैं और दुध का जो हिस्सा छोटी वाहिनियों और कोष्ठक में होता है उसे ''कोष्ठक दूध'' कहते हैं। सिस्टर्न दूध आसानी से अयन से निकल आता है पर कोष्ठक दूध या अवशिष्ट दूध का अयन से उत्सर्जन आसानी से नहीं होता है, अगर इस दूध को अयन से न निकाला जाए तो यह अयन में दबाव बनाकर दूध निर्माण की प्रक्रिया को बाधित करता है। इसके अतिरिक्त अयन में बचे हुए दूध में जीवाणुओं की वृद्वि को रोकने के लिए इस दूध का निकालना आवश्यक है। कुछ क्रियाएँ जैसे बच्चे द्वारा स्तनपान, अयन का धोना, अयन की मालिश करना या सहलाना अथवा दोहन पूर्व बछड़े को दिखाने पर ऑक्सीटोसिन हारमोन का स्राव पीयूषिका ग्रंथि के पिछले भाग में होता है। स्तन के अन्दर पार्श्व संवेदी तंत्रिकाऐं होती हैं। जो थन चूसने पर या दोहने पर इन आवेगों को मेरूरज्जा से ले जाकर पश्च–पीयूषिका तक पहुँचाती है। जहाँ से रक्त द्वारा थन की ग्रंथियों में पहुँचता है और कोष्ठक को संकुचित कर दूध निष्कासन करता है।

रक्त में ऑक्सीटोसिन की मात्रा

ऑक्सीटोसिन एक पेप्टाइड हारमोन है जो मात्र आठ अमीनों अम्लों से बना है। ऑक्सीटोसिन हारमोन का अर्धायु काल 2–3 मिनट का होता है। इस हारमोन की मात्रा दुधारू पशुओं के रक्त में बहुत कम होती है। दोहन उद्वीपन के कारण यह मात्रा बढ़ जाती है जो कि अयन से दूध के निष्कासन के लिए आवश्यक है। दूध दोहने पर या बच्चे को दूध पिलाने, मशीनों की आवाज, दूध दोहने के स्थान पर पशुओं को ले जाने पर, ग्वालों को देखने से और दूध दोहने के समय दाना डालने पर भी इस हारमोन का उत्पादन होता है। कटड़े/बछड़े द्वारा थन चूसने, हाथ से दूध दोहने और मशीन से दूध निकालने की आपस में तुलना करने से यह पाया गया है कि बच्चे के द्वारा थन चूसने से सबसे ज्यादा ऑक्सीटोसिन हारमोन का संचार होता है। दोहने पर ऑक्सीटोसिन की रक्त में मात्रा 16.6 माइक्रो यूनिट प्रति मि.लि. तक पहुँचती है जो केवल 2 से 3 मिनट तक ही रहती है। इतने कम समय में ही यह हारमोन दूध उत्सर्जन करने में कामयाब हो जाता है और फिर रक्त में एंजाइम ऑक्सीटोसिनेज द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।

दुग्ध संघटन पर प्रभावः

ऑक्सीटोसिन हारमोन की रक्त में मात्रा दूध दोहने के दौरान बहुत ही कम होती है। यदि पशु के दूध निकालने के लिए अधिक ऑक्सीटोसिन की मात्रा लगाई जाए तो दूध जल्दी उतर आता है लेकिन इससे दूध के संघटन पर प्रभाव पड़ता है। दूध में वसा की मात्रा बढ़ जाती है। जबकि दूध शर्करा (लैक्टोज) की मात्रा कम हो जाती है। इसके अतिरक्त सोडियम एवं क्लोराईड लवण बढ़ जाते हैं, एवं पोटेशियम व आयरन की मात्रा कम हो जाती है। ऐसा माना जाता है कि ऑक्सीटोसिन हारमोन का इंजेक्शन लगाने पर कोष्ठकों की कोशिकाओं की पारगमन क्षमता (परमीएबीलिटी) बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप दूध के कुछ तत्व जैसे पोटेशियम एवं लैक्टोज प्लाज्मा में आ जाते हैं जबकि खून में पाए जाने वाले पदार्थ सोडियम, क्लोराईड एवं बायकार्बोनेट दूध में आ जाते हैं। इस तरह से दूध और खून के तत्वों में अदला–बदली हो जाती है

जिससे दूध के संघटन में परिर्वतन आ जाता है।

पशु स्वास्थ्य पर प्रभाव :

ऑक्सीटोसिन की कम मात्रा (2 आई.यू) या इससे कम भी पूरा दूध उतार देती है और पशु के स्वास्थ्य पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु बहुत अधिक (50 या 100 आई.यू.) या इससे अधिक मात्रा पशुओं के मदकाल एवं प्रजनन क्षमता को प्रभावित करती है। इस हारमोन का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में गाभिन पशुओं (जिन्हें बच्चे के जन्म में कोई कठिनाई हो) से बच्चा लेने में भी किया जाता है क्योंकि यह हारमोन प्रसव के समय मांसपेशियों को संकुचित करता है जिससे गर्भाशय भी संकुचित हो जाता है। इसलिए इस हारमोन को सीमित मात्रा में एवं पशु चिकित्सकों की देखभाल में ही लगाया जाना चाहिए।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव :

पशुओं में ऑक्सीटोसिन के टीके के उपयोग के द्वारा उत्पादित दूध पीने से मानव शरीर पर किसी भी प्रकार के दुष्प्रभाव के कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। ऑक्सीटोसिन का अर्धायु काल अत्यंत न्यून (2–3 मिनट) होने के कारण इस हारमोन की मात्रा रक्त में बहुत शीघ्रता से कम होती है और कुछ ही मिनटों के अन्तराल में नगण्य रह जाती है जिसका मानव स्वास्थ्य पर कोई दुष्प्रभाव सम्भव नहीं है। पशुपालकों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली मात्रा (1–2 आई.यू) एक बहुत कम मात्रा है और इस मात्रा में पशुओं में आक्सीटोसिन का टीका लगाने से दूध में इसकी किसी सार्थक मात्रा का अवशेष रह जाना संभव नहीं है। आक्सीटोसिन एक प्रोटीन हारमोन होने के कारण, यदि ऐसा मान भी लिया जाये कि ऑक्सीटोसिन की कुछ मात्रा दूध में अवशेष के रूप में आ जाती है। मनुष्य के पाचन तंत्र में जैसे ही कोई प्रोटीन पहुँचता है पाचक अम्लों द्वारा उसे तुरन्त अमीनो अम्लों में विघटित कर दिया जाता है फलस्वरूप उसका कोई प्रभाव शेष नहीं रह जाता। ऐसा विदित होता है कि ऑक्सीटोसिन के सम्बन्ध में जनता में बहुत सारी भ्रांतियाँ हैं जिसका कोई प्रमाणिक तथ्य नहीं है फिर भी जो अवयव पशुपालकों द्वारा ऑक्सीटोसिन के रूप में प्रयोग किया जाता है उसका विश्लेषण आवश्यक है जिससे यह पता लग सके कि उसमें ऑक्सीटोसिन के अलावा और कितने रायायनिक अवयव उपलब्ध हैं और उनकी मात्रा कितनी हैं। वैज्ञानिको/विशेषज्ञों द्वारा संस्तुत एवं समुचित मात्रा में ऑक्सीटोसिन का पशुओं की जीवन रक्षा के लिये उपयोग करना तर्कसंगत है परन्तु इसका निरन्तर दूध उतारने के लिए प्रयोग करना तर्कसंगत नहीं है।

दूध उत्क्षेपन में बाधा :

कुछ प्रकार के कारक जैसे– तेज आवाज, पशु के दोहने के स्थान में परिवर्तन, नए ग्वाले या दूधिये द्वारा दूध निकालना, अत्याधिक पेशी क्रिया, पशु के शरीर में कहीं दर्द जैसे विपरीत परिस्थितियाँ ऑक्सीटोसिन हारमोन का स्रवण कम या खत्म कर देती है जिसमें दुग्ध निष्कासन में बाधा हो जाती है।

ऑक्सीटोसिन एक दूध उत्तेजक हारमोन है जो अयन में पूरी तरह दूध निकालने में सक्षम हैं और अयन को पूरी तरह खाली करके नए दुग्ध निर्माण के लिए स्थान उपलब्ध करवाता है। ऑक्सीटोसिन जैसा प्रभाव देने वाला टीका सरकार द्वारा प्रतिबंधित होने के उपरांत भी अंधिकांश पशुपालकों को आसानी से उपलब्ध हो जाता है। सस्ता होने के कारण एवं लगाने की आसान विधि के कारण किसान इस हारमोन का अंधाधुंध प्रयोग कर रहे हैं। हमें सामान्य एवं स्वच्छ दूध की प्राप्ति चाहिए जो पशु को बिना तनावग्रस्त करके प्राप्त किया जा सकता है।

ऑक्सीटोसिन के टीके का प्रयोग आजकल अधिक किया जा रहा है जो कि अनुचित है। इस टीके का प्रयोग केवल उन पशुओं में किया जाना चाहिए जिसमें 'दुग्ध दोहन' की प्रक्रिया समुचित न हों। यह कठिनाई अधिकतर भैंसों में होती है। इन टीकों के अधिक प्रयोग से अयन की कोशिकाओं की संरचना भी प्रभावित हो सकती है। दोहने के समय पशु को प्यार से सहलाते हुए तनाव रहित परिस्थितियों में दोहने चाहिए ताकि पशु के अंदर से ही ऑक्सीटोसिन हारमोन का सामान्य संचार हो सके तथा पशु द्वारा अधिक से अधिक दूध प्राप्त किया जा सके। पशु के आस पास का वातावरण शांत, स्वच्छ तथा अनुकूल होना चाहिए। ऑक्सीटोसिन हारमोन का प्रयोग केवल पशु–चिकित्सक की सलाह पर ही उपयुक्त मात्रा (1 आई.यू.) में करना चाहिए।

आशा है, इन सब शंकाओं के दूर होने पर लोगों के मन में इस हारमोन के प्रति उत्पन्न कई भ्रातियाँ जैसे ''ऐसा दूध पीने से मनुष्य के शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता'' दूर हो जाएगी। वैसे तो यह हारमोन विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ) की आवश्यक ड्रग सूची में शामिल है, लेकिन उपरोक्त शंकाओं के बारे में पूर्ण जानकारी होने पर विशेषज्ञों की देख रेख में इसका उपयोग पशुओं की समस्याओं के निवारण के महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

पशुओं में दुग्ध–ज्वर कारण व निवारण

डा. एच.आर. मीणा एवं डा. गोपाल सांखला

दुग्ध ज्वर एक चयापचय संबंधी रोग है जो गाय या भैंस में ब्याँने से कुछ समय पूर्व अथवा बाद में होता है। इससे पशु के शरीर में कैल्शियम की कमी हो जाती है। मांसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं। शरीर में रक्त का दौरा काफी कम व धीमी गति से होता है। अन्त में, पशु सुस्त और बेहोश हो कर निढ़ाल पड़ जाता है। पशु एक तरफ पेट और गर्दन मोड़ कर बैठा रहता है। इसमें पशु के शरीर का तापमान सामान्य से कम होता है तथा शरीर ठंडा पड़ जाता है, हालांकि इसे फिर भी दुग्ध–ज्वर ही कहा जाता है।

सामान्य रूप से गाय–भैंस में सीरम कैल्शियम स्तर 10 मिलीग्राम प्रति 100 मि.ली. होता है। जबकि कैल्शियम स्तर 7 मिलीग्राम प्रति 100 मि.लि. से कम हो जाता है तो दुग्ध ज्वर के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। दुग्ध ज्वर अधिक दूध देने वाली गायों व भैंसों में 6 से 11 वर्ष की उम्र में तीसरे से सातवें ब्यांत में अधिक होता है।

यह रक्त में कैल्शियम की कमी के कारण होता है। ब्यांत के समय मुख्यतः तीन कारणों से रक्त से कैल्शियम की कमी होती है।

1. ब्याँने के बाद खीस के साथ बहुत सारा कैल्शियम शरीर से बाहर आ जाता है। खीस में रक्त में 12–13 गुणा अधिक

कैल्शियम होता है।

2. ब्याँने के बाद अचानक खीस निकल जाने के बाद हड्डियों से शरीर को तुरन्त कैल्शियम नहीं मिल पाता है।
3. ब्याँने के बाद यदि पशु को कम आहार दिया जाए तो आमाशय व आंत अपेक्षाकृत कम सक्रिय होने से कैल्शियम का अवशोषण काफी कम होता है।

शरीर में मांसपेशियों में सामान्यत तनाव बनाए रखने के लिए रक्त में कैल्शियम व मैग्नेशियम का अनुपात 6:1 होना चाहिए, कैल्शियम तनाव को बढ़ाता है। जबकि मेग्नेशियम तनाव को घटाता है। रक्त में कैल्शियम–मेग्नेशियम के सामान्य अनुपात में बदलाव आते ही निम्न स्थितियाँ हो सकती हैं।

1. कैल्शियम कम + मैग्नेशियम ज्यादा = लकवा व नशे की हालत।
2. कैल्शियम कम + मैग्नेशियम कम = चारों पैरों में टिटनेस जैसे लक्षण, पेशी स्फुरण के साथ बेहोशी और ऐंठन।
3. कैल्शियम कम + मैग्नेशियम सामान्य = अधिकतर समय पशु बैठा रहता है। आसानी से खड़ा नहीं हो पाता है। अंत में कोमा जैसी स्थिति हो जाती है।

लक्षणः

दुग्ध ज्वर के लक्षणों को तीन अवस्थाओं में बांटा गया है।

1. प्रथम अवस्था : पशु कमजोर व थका हुआ महसूस करता है। पशु घास कम खाने लगता है। पशु के दुग्ध उत्पादन में कमी आ जाती है।

2. द्वितीय अवस्थाः इसमें पशु गर्दन मोड़कर बैठ जाता है तथा इसे उरास्थि पर बैठी हुई अवस्था भी कहते हैं। इसके लक्षण इस प्रकार हैं–

– पशु अपनी गर्दन को पार्श्व भाग की ओर मोड़कर निढ़ाल या बैठा रहता है, पशु खड़ा नहीं हो पाता है।
– शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाता है जिससे शरीर ठंडा पड़ जाता है। मुख्यतः पैर ठंडे पड़ते हैं।
– आँखे सूख जाती है। आँख की पुतली फैलकर बड़ी हो जाती है। आँखें झपकना बंद हो जाती हैं।
– प्रथम आमाशय की गति काफी कम हो जाती है जिससे कब्ज होती है।
– गुदा की मांसपेशियाँ ढ़ीली पड़ जाती है।

3. तृतीय अवस्थाः– इस अवस्था में पशु लेटा रहता है।

– इसमें पशु बेहोशी की हालत में आ जाता है।
– शरीर का तापमान बहुत कम हो जाता है।
– नाड़ी गति अनुभव नहीं होती तथा हृदय ध्वनि भी सुनाई नही पड़ती है। हृदय गति बढ़कर 120 प्रति मिनट तक पहुँच जाती है।
– पशु के बैठे रहने की वजह से अफारा भी हो जाता है।

उपचार जितना जल्दी हो सके करना चाहिए। इसके लिए पशुचिकित्सक से सम्पर्क करें। क्योंकि यदि पशु एक बार तृतीय अवस्था में पहुँच जाता है तो मांसपेशियों में लकवा हो जाता है।

पशुओं में फैलने वाले कुछ संक्रामक रोग

डा. मुकेश भकत

गलघोंटू

यह बीमारी प्रायः गायों, भैंसों एवं ऊँटों में पाई जाती है तथा घोड़े और सुअरों को भी हो सकती है। पशु को बहुत तेज बुखार (106–107 डिग्री फा.) हो सकता है। मुँह से बहुत लार गिरने लगती है, पशु खाना पीना बन्द कर देता है। गर्दन, गले तथा झालर में सूजन आ जाती है और उसको दबाने से दर्द होता है। सांस लेने में कठिनाई होती है। कुछ समय पश्चात इसके कीटाणु फेफड़ों तथा भोजन नली में प्रवेश कर उसको प्रभावित कर देते हैं। पशु के पेट में दर्द तथा गोबर के साथ खून आने लगता है।

उपचार :

इसका उपचार बहुत कठिन नहीं होता है। समय से पशु को उचित मात्रा में सलफेडिमिडिन का घोल नस द्वारा देना चाहिए। इस के साथ पैनिसेलिन तथा औक्सी टेट्रासाइकलिन जरूरी है। पशु चिकित्सक से सलाह जरूर करें।

रोकथाम :

चूँकि बीमारी वर्षा के दौरान होती है। अतः मई–जून में सभी पशुओं का टीकाकरण करवा लें। इसके टीके राजकीय पशु चिकित्सालय की तरफ से मुफ्त लगाये जाते हैं, इसका टीकाकरण आवश्यक भी है।

जहरवाद (ब्लैक क्वार्टर) :

यह बीमारी 6 महीने से दो साल के पशुओं में अधिक होती है और प्रायः गायों व भैंसों में पाई जाती है। यह बीमारी किसी भी मौसम में हो सकती है, लेकिन गर्मी के दिनों में अधिक होती है। यह बीमारी कीटाणुयुक्त भोजन या पानी के अर्न्तगृहण से होती है। यह भयानक रोग है और पशु 48 घन्टे के अन्दर ही मर सकता है। इसमें बहुत अधिक बुखार, पुट्ठी पर दर्द भरी सूजन, चलने में परेशानी होती है और कुछ समय पश्चात पशु जमीन पर बैठ जाता है। सूजन वाला हिस्सा कुछ काला सा नजर आता है और उसको दबाने से चरड़ चरड़ की आवाज आती है। पशु खाना पीना बन्द कर देता है और उसकी नाड़ी गति बहुत तेज 100–120 प्रति मिनट तक हो जाती है और कुछ समय बाद सूजन आती है एवं पशु को दर्द नहीं होता है। खाल भी कुछ समय बाद सूखी हो जाती है और तिड़कने लगती है। कभी–कभी बीमारी के लक्षण जीभ, दिल, झालर एवं अयन में भी दीखते हैं। पशु बिना किसी रोग लक्षण के भी मर जाते हैं।

रोकथाम :

एक वर्ष से पहले पशुओं में बीमारी का टीका तथा रोग ग्रसित पशुओं को सीरम लगवाना चाहिए।

क्षय रोग (टी.बी.) :

यह कभी भी किसी भी उम्र एवं मौसम में पशुओं और मनुष्यों को हो सकता है। यह पशुओं से मनुष्यों को भी हो सकता है। इस रोग से ग्रसित पशु का दूध पीने से मनुष्यों में भी यह रोग हो सकता है। इस रोग के कीटाणु प्रायः श्वांस, भोजन एवं पानी द्वारा एक पशु से दूसरे पशु में फैलते हैं। इस रोग में पशु की मृत्यु की आशंका बहुत कम या न के बराबर होती है। कुछ पशुओं मे तो लक्षण बहुत लम्बी बीमारी के बाद दिखाई पड़ते हैं। भूख कम हो जाती है तथा बुखार आने लगता है। पशु के बालों की चिकनाई तथा चमक कम हो जाती है और पशु कमजोर हो जाता है। यह बीमारी किसी भी अंग में हो सकती है और बीमारी के लक्षण भी उसी के अनुसार होते हैं फेफड़े ग्रसित होने की स्थिति में श्वास के साथ गुड़–गुड़ की आवाज आने लगती है,

तथा बाद में सांस लेने में कठिनाई होती है और पशु मुँह खोलकर सांस लेने लगता है। कुछ समय पश्चात् फेफड़ों के चारों ओर पानी इकट्ठा हो जाता है। जब रोग के कीटाणु अयन को ग्रसित करते हैं तो इस रोग का दूध द्वारा मनुष्य में आने का भय रहता है। अयन में गाँठ बन जाती है और रोग के कीटाणु दूध में आने लगते हैं। धीरे–धीरे पशु कमजोर होने लगता है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है।

उपचार :

इसमें स्ट्रेप्टोमाईनसीन आइसोनिपामिड का टीका पशु चिकित्सक की सलाह से लगाना चाहिए।

रोकथाम :

बीमार पशु को अलग रखें तथा 'टुबरकुलीन जांच' प्रक्रिया द्वारा क्षय रोग ग्रसित पशुओं का निदान करवा कर बी.सी.जी. का टीका लगवाना चाहिए।

ब्रुसेलोसिस (गर्भपात) :

यह संक्रामक रोग अधिकतर गायों, भैंसों, बकरियों तथा भेड़ों में पाया जाता है और मनुष्यों को भी हो सकता है। इस रोग के कीटाणु खाद्य पदार्थों द्वारा या शरीर के किसी भी प्रकार घाव या खरोंच द्वारा भी प्रवेश कर सकते हैं। इस रोग के कारण मादा पशुओं में छः महीने या उससे अधिक का गर्भपात हो जाता है और पशु की इसके पश्चात गर्भधारण करने की क्षमता काफी कम हो जाती है। इसके पश्चात् पशु गर्भाधारण नहीं कर सकता है। गर्भपात के कारण जेर बाहर नहीं निकल पाती है और पशु के बच्चेदानी की मवाद शरीर के अन्य अंगों को भी प्रभावित करती है और पशु बाद में गर्भधारण नहीं करने की स्थिति में हो जाता है।

रोकथाम :

- सफाई के नियमों का पालन करना चाहिए।
- रोगी सांड के वीर्य को काम में नहीं लाना चाहिए।
- गाभिन पशुओं को अलग रखें।
- पशुओं को बचाव का टीका लगवायें।

उपचार :

इस बीमारी का कोई उपयुक्त उपचार नहीं है। संक्रामक रोगों की रोकथाम करने के लिए कुछ सुझावः निम्नलिखित है :

- पशु को खरीदते समय यह ध्यान रखें कि वह उस क्षेत्र से नहीं खरीदा जाये जहाँ पर संक्रामक रोग हो रहा हो।
- पशु को स्वच्छ, हवादार, जालीदार एवं खुले स्थान पर रखें।
- पशु का पानी एवं चारा दाना किसी भी प्रकार से रोगी पशु के सम्पर्क में नहीं आने दें।
- स्वस्थ पशु को रोगी पशु के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहिए।
- रोगी पशु का गोबर, पेशाब, जेर आदि को बाहर किसी गड्ढ़े में डालकर उस पर चूना डालें।
- मरे हुए रोगी पशु को जला देना चाहिए या कहीं दूर 6–8 फुट गहरे गड्ढ़े में दबा दें।
- रोगी पशु का दूध, माँस आदि प्रयोग न करें।
- रोगी पशु को तुरन्त स्वस्थ पशु से अलग कर देना चाहिए तथा उस पर अच्छी तरह से निगरानी रखें।
- पशुओं को टीका समय पर लगवा लेना चाहिए।
- पशुओं पर किसी प्रकार से चिचड़ी आदि नहीं रहने चाहिए। मक्खी, मच्छर को फ्लीट आदि से समाप्त कर देना चाहिए।
- पशु को सदैव साफ पानी एवं सन्तुलित आहार दें।
- पशु के बीमार होने पर तुरन्त पशु चिकित्सक से सम्पर्क कर उपचार करवाना चाहिए।

गाय व भैंसों के बछड़ों के प्रमुख रोग व रोकथाम

अर्जुन प्रसाद वर्मा

नाभि सड़ना (नेवल इल) :

यह बीमारी हाल ही में पैदा हुए बच्चों में होती है। इसमें नाभि में मवाद पड़ जाता है। रोग के आरम्भ में बछड़ा सुस्त हो जाता है, लेटा रहता है, दूध नहीं पीता, तेज बुखार आता है और वह सांस जल्दी–जल्दी लेता है। नाभि गीली व चिपचिपी दिखाई देती है। एक दो दिन सूजन बढ़ने पर नाभि गर्म व सख्त हो जाती है और उसमें बहुत दर्द होता है। कभी–कभी घुटनों व जोड़ों में सूजन आ जाने के कारण बछड़ा लंगड़ाने लगता है।

बचाव व रोकथाम :

1. बछड़ा पैदा होने का स्थान साफ–सुथरा रखिए।
2. नाल गिरने के बाद नाभि को किसी कीटाणुनाशक दवा से साफ करके प्रतिदिन टिंचर आयोडीन या बीटाडीन आदि उस समय तक लगाते रहें जब तक नाभि बिल्कुल सूख न जाए।

उपचार :

1. रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही पास के पशु–चिकित्सक की तुरन्त सलाह लें और आवश्यक इलाज करायें।

सफेद दस्त (व्हाइट स्कोर) :

यह बछड़े का एक घातक रोग है जिसमें 24 घंटे में मृत्यु हो जाती है। यह रोग एक माह तक के बच्चों को होता है। रोग के आरम्भ में बुखार आता है। भूख कम लगती है और बदहजमी हो जाती है। कुछ समय बाद पतले दस्त आने लगते हैं जो गन्दे सफेद या पीलापन लिए होते हैं। इनमें कभी–कभी खून भी आता है तथा विशेष प्रकार की बदबू होती है। कभी–कभी पेट फूल जाता है।

बचाव व रोकथाम :

बच्चों को पर्याप्त मात्रा में खीस पिलायें तथा गंदगी से बचायें। खीस पिलाने से पहले अयन व थनों की अच्छी तरह साफ करें। खीस की मात्रा कम या ज्यादा न हो। उसके वज़न का दसवाँ हिस्सा एक दिन की खुराक होती है।

उपचार :

रोग मालूम होने पर तुरन्त पशु चिकित्सक की सलाह लें। दो–तीन दिन तक खीस या दूध की मात्रा आधी कर देनी चाहिए। उपचार हेतु नैफ्टिन या पैसुलिन वोलस का इस्तेमाल अच्छा रहता है।

निमोनिया :

यह बीमारी 3 सप्ताह से लेकर चार माह तक के बच्चों को ज्यादा होती है। गन्दे सीलन–युक्त स्थान में यह रोग अधिक फैलता है। रोग के आरम्भ में बछड़ा सुस्त हो जाता है, खाने में रूचि नहीं रहती। सांस तेजी से लेता है, खाँसी आती है तथा आँख व नाक से पानी बहता है और बुखार तेज़ हो जाता है। रोग बढ़ने से नाक से बहने वाला पानी गाढ़ा व चिपचिपा हो जाता है। सांस लेने में कठिनाई होती है, खांसी तेज़ हो जाती है और

अन्त में उपचार के अभाव में मृत्यु भी हो सकती है।

बचाव व रोकथाम :

बछड़ों को साफ व हवादार कमरे में जिसमें सीलन न हो और तेज हवा के झोंके न आते हों, रखना चाहिए। स्वस्थ बछड़ों को रोगी बछड़ों से अलग रखें।

उपचार :

पास के पशु–चिकित्सक से सलाह लेकर तुरन्त इलाज करायें।

मुँह रोग (काफ डिप्थीरिया) :

यह छोटे बछड़ों का रोग हैं जिसमें मुंह व तालू में घाव हो जाते हैं। सुस्ती, खाने में अरूचि, मुँह से लार बहना तथा बुखार इस रोग के प्रमख लक्षण हैं।

मुँह खोलने पर जीभ, मसूढ़ों, तालू व गले में फफोले दिखाई पड़ते हैं जो बाद में घाव बन जाते हैं। इनकी वजह से बछड़ा खाना चबा नहीं सकता है।

बचाव व रोकथाम :

खाने और पानी के बर्तन साफ होने चाहिए। रोगी बछड़ों को स्वस्थ बछड़ों से अलग रखें।

उपचार :

लक्षण मालूम होते ही तुरन्त पास के पशु–चिकित्सक से राय लेकर इलाज कराएं।

पेट के कीड़े (एसकेरिएसिस) :

दूध पीने वाले बछड़ों के पेट में आमतौर पर लम्बे, गोल कीड़े हो जाते हैं।

लक्षण :

आँखों से पानी गिरना, सुस्ती, खाने में अरूचि,लगातार कमजोरी, पेट बढ़ जाता है, दस्त आना तथा आँखों की झिल्ली का छोटा हो जाना।

बचाव व रोकथाम :

बछड़ों को गंदा पानी नहीं पीने देना चाहिए। चूंकि रोगी बछड़े के गोबर में अंडे होते हैं, अतः स्वस्थ बछड़ों को रोगी बछड़ों के गोबर आदि से दूर रखना चाहिए। बछड़ों के गोबर की समय–समय पर जाँच करानी चाहिए। नियमित कृमिनाशक दवाईयों का उपयोग करना एक उपयुक्त बचाव है।

उपचार

रोग का संदेह होने पर तुरन्त ही पास के पशु चिकित्सक से सलाह लें।

डेरी पशुओ में जेर रूकने की समस्या एवं प्रबन्धन

निशान्त कुमार, एस.एस. लठवाल एवं बृजेश पटेल

सामान्यतः गाभिन पशुओं में ब्याने के 4–6 घंटे के अन्दर जेर स्वतः बाहर निकल आती है, लेकिन ब्याने के 8–12 घंटे के बाद भी जेर नहीं निकलती है तो उस स्थिति को जेर का रूकना अथवा रिटेंड प्लेसेंटा कहा जाता है। डेरी पशुओं में जेर के अटकने की दर 7–12 प्रतिशत तक देखी गयी है। जेर के अटकने पर पशु चिकित्सक से तुरंत सम्पर्क करना चाहिए व सलाह अनुसार कार्य करना चाहिए।

- गर्भावस्था के दौरान गर्भाशय के ''मासान्कुर'' (Caruncle) जेर के ''दलो'' (Cotyledons) के साथ जुड़ जाते है एक कार्यात्मक इकाई का निर्माण करते है जिन्हें ''प्लेसेनटोम'' कहा जाता है।
- सामान्यतः ब्याने के बाद मासान्कुर एवं दल अलग होने लगते है और जेर बाहर निकल आता है। कुछ असामान्य स्थितियों में मासान्कुर एंव दल अलग नहीं हो पाते है और जुड़े रह जाते है, इस स्थिति में जेर अटक जाती है और बाहर नहीं निकल पाती।

जेर अटकने के कारण :

- गर्भपात
- संक्रामक यौन रोग जैसे ब्रुसेल्लोसिस, केम्पाइलो बेकटेरिओसिस आदि
- पोषक तत्वों का असंतुलन
- समय से पहले प्रसव
- कष्टमय प्रसव
- पशु में कमजोरी

लक्षण :

- जेर घुटनों तक लटकी रहती है।
- पशु के योनि द्वार से बदबूदार स्त्राव निकलता रहता है।
- पशु के तापमान एवं सांस की गति में वृद्धि हो जाती है।
- पशु के दुग्ध उत्पादन में कमी हो जाती है।
- पशु में भूख की कमी हो जाती है।

जेर के सही समय पर न निकलने से पशु पालक को बेहद हानि होती है। प्रायः पशु के गर्भाशय में संक्रमण हो जाता है और गर्भाशय में सूजन (metritis) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। गर्भाशय के सामान्य अवस्था में आने में देर हो जाती है, प्रसव उपरान्त मद अंतराल बढ़ जाता है और पशु बार बार गर्भाधान कराने पर भी गर्भित नहीं होता है या रिपीट ब्रीडिंग का शिकार हो जाता है।

चिकित्सीय प्रबंधन :

- जेर के अटक जाने के चिकित्सीय प्रबंधन में बुनियादी लक्ष्य यही रहता है कि मादा पशु के जननांग जल्द से जल्द अपनी सामान्य स्थिति में वापस आ जाएं।
- अटके हुए जेर को योनि मार्ग में हाथ डालकर धीरे–धीरे खीचकर निकालने का तरीका कई सालों से प्रयोग किया जाता रहा है लेकिन कई शोधों से यह ज्ञात हुआ है की इससे गर्भाशय की नाजुक परत को बेहद नुकसान पहुंचता है। कई बार गर्भाशय में सूजन एवं संक्रमण हो जाता है।
- सबसे बेहतर उपाय यही है कि योनि के रास्ते बायाँ हाथ डालकर मासान्कुर एवं दलों को छुड़ाया जाए तथा दाएँ हाथ से जेर का जितना हिस्सा आसानी से निकलता है उसे धीमे धीमे निकाला जाए। अगर पूरी तरह जेर नहीं निकल पा रही हो तो खीचतान नहीं करनी चाहिए।
- जेर को हाथ से निकालने के सन्दर्भ में यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि अगर पशु का जेर अटका है तो उसे 12 घंटे के बाद ही हाथ डालकर निकाला जाना चाहिए। कई बार पशुपालक घबराहट में 4–5 घंटे के बाद ही जेर से खींचतान करने लगते है। यह एक बहुत बड़ी गलती होती है

क्योंकि उस समय प्लेसेंटोम अपरिपक्व होते है, इस खींचतान से ढेर सारा खून निकल सकता है, गर्भाशय शोथ हो सकता है और पशु हमेशा के लिए बाँझ भी हो सकता है।

- जेर को निकालने के बाद 3–5 दिन तक गर्भाशय में 2–4 एंटी–बोयोटिक के बोलस रख देना चाहिए जैसे नाइटरोफुराजोन एवं यूरिया के बोलस अथवा सिप्रोंफ्लोक्सासिन या टैट्रासाईकलीन के बोलस इत्यादि।
- संक्रमण को रोकने के लिए 3–5 दिन तक अंतर्गर्भाशयी मार्ग से स्ट्रेपटोपेनिससिलिन या टैट्रासाईकलीन एंटी–बायोटिक लगाना चाहिए।

बचाव

- ब्याने से 1–2 माह पूर्व दाना मिश्रण के साथ लगभग 150–250 ग्राम सरसों का तेल रोजाना देना चाहिए। यह जेर के सही समय पर निकलने में सहायता प्रदान करता है।
- ब्याने के तुरंत बाद पशु को 0.5–1 किलो गुड़ व गेहूँ का दलिया देना चाहिए इससे जेर के निकलने में मदद मिलती है।
- यह पाया गया है की गर्भावस्था के आखिरी महीने में अगर पशु को सेलेनियम और विटामिन 'ए' एवं 'ई' दिया जाए एवं हल्का व्यायाम कराया जाए तो जेर बिलकुल सही समय पर निकल जाता है।

रा.डे.अनु.सं., करनाल का किसान हैल्प लाईन न. 1800 – 180 – 1199 (टोल फ्री)

सम्पादक मण्डल

1.	डा. केहर सिंह कादियान	अध्यक्ष	डेरी विस्तार प्रभाग	6.	डा. बी. एस. मीणा	सदस्य	डेरी विस्तार प्रभाग
2.	डा. अर्चना वर्मा	सदस्य	पशु अनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग	7.	डा. राकेश कुमार	सदस्य	चारा अनु.प्र.केन्द्र
3.	डा. मंजू आशुतोष	सदस्य	पशु शरीर क्रिया विज्ञान प्र.	8.	डा. ओमवीर सिंह	सदस्य	पशु अनुवंशिकी एवं प्रजनन प्रभाग
4.	डा. चन्द्र दत्त	सदस्य	पशु पोषण प्रभाग	9.	डा. हँस राम मीणा	सम्पादक	डेरी विस्तार प्रभाग
5.	डा. सुजीत कुमार झा	सदस्य	डेरी विस्तार प्रभाग				

वेबसाइट : www.ndri.res.in

बुक – पोस्ट
त्रैमासिक मुद्रित सामग्री

भारतीय समाचार पत्र रजिस्टर के अधीन पंजीकृत संख्या 19637/7

सेवा में,

प्रेषक .....

डेरी विस्तार प्रभाग, ...

राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, ...

करनाल – 132 001 (हरियाणा), भारत

प्रकाशक : डा. आर.आर.बी. सिंह, निदेशक, रा.डे.अनु.सं., करनाल
रुपरेखा : डा. केहर सिंह कादियान, अध्यक्ष, डेरी विस्तार प्रभाग
सम्पादक : डा. हँस राम मीणा, वरिष्ठ वैज्ञानिक, डेरी विस्तार प्रभाग
प्रूफ रीडिंग : श्रीमती कंचन चौधरी, सहा. मुख्य तकनीकी अधिकारी, राजभाषा एकक

प्रकाशन तिथि : 31.03.2017

मुद्रित प्रति – 3000

AARONMedia 098964 33225